

## भारतीय धर्म साधना में कबीर का स्थान : कबीर ग्रंथावली

## 4

## शगुन सिक्का\*

काल की कठोर आवश्यकताएं महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हुआ था। कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति के अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत कठिन हो जाता। परंतु कबीर ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिए जनता इस समय तैयार नहीं थी। पंढरपुर के भक्त शिरोमणि की भक्ति जनता को आकृष्ट ना कर सकी, लोगों ने उसका वैसा अनुसार नहीं किया जैसे आगे चलकर कबीर का किया और अंत में उन्हें भी ज्ञानाश्रुति निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा।

यह कहा जा चुका है कि कबीर दास जी के जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती क्योंकि उन सबका आधार जनसाधारण और विशेषकर कबीर पंथियों में प्रचलित दंत कथाएं हैं। कहते हैं कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे जो स्वामी रामानंद जी के बड़े भक्त थे। उनकी एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन वे स्वामी जी के आश्रम में गये। प्रणाम करने पर स्वामी जी ने उसे पुत्रवती होने का आर्शीवाद दिया ब्राह्मण देवता ने चौंक कर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया तथा स्वामी जी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता है। परन्तु इतने से संतोष करो के इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। आर्शीवाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकापवाद के भय से उसने उसे लहर तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात नीरू नाम का एक जलुहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दंपति के कोई पुत्र न था। बालक का भव्य रूप पुत्र के ललायित पति को चुभ गया। और वे इसी बालक का भरण पोषण कर पुत्र वाले हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवदभक्त कबीर हुआ। कबीर का विधवा का पुत्र होना असंभव नहीं। कितुं स्वामी रामानंद के आर्शीवाद की बात ब्राह्मण कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से ही पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है। जैसे कि अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में जोड़ी गई। मुस्लमान घर में

पालित होने पर भी कबीर का हिंदु विचारों से सरोबार होना उनके शरीर में प्रवाहित होने वाले ब्राह्मण अथवा कम से कम हिंदु रक्त की ही ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने संबंध में कुछ कहा भी नहीं है वहीं अपने को जुलाहा और बनारस का रहने वाला बताया है।

जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर।

मेरे राम की अभेपद नगरी, कहैं कबीर जुलाहा।।

तू ब्राह्मण मै काशी का जुलाहा।

### भारतीय धर्म साधना में कबीर का स्थान

जिस युग में कबीर आविर्भूत हुए थे उससे कुछ ही वर्ष पूर्व भारतवर्ष के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना घट चुकी थी। यह घटना इस्लाम जैसे एक सुसंगठित संप्रदाय का आगमन था। इस घटना ने भारतीय धर्म-मत और समाज व्यवस्था को पहली बार झकझोर दिया था। उसकी अपरिवर्तनीय समझी जाने वाली जाति व्यवस्था को पहली बार जबरदस्त ठोकर लगी थी। सारा भारतीय वातावरण क्षुब्ध था। बहुत से पंडितजन इस संक्षोभ का कारण खोजने में व्यस्त थे और अपने अपने ढंग से भारतीय समाज और धर्म मत को संभालने का प्रयत्न कर रहे। ऐसा जान पड़ता है कि पहली बार भारतीय मनीषियों को एक संघबद्ध धर्माचार के पालन की जरूरत महसूस हुई इस्लाम के जाने के पहे इा विशाल जनसमूह का कोई एक नाम तक नहीं था। अब उसका नाम हिंदू पड़ा। हिंदू अर्थात भारतीय अर्थात गैर इस्लामी मत। स्पष्ट ही इस्लामी मत में कई के मत थे, कुछ ब्रह्मवादी थे, कुछ कर्मकांडी थे, कुछ शैव थे, वैष्णव थे, कुछ शाक्त थे, कुछ स्मार्त थे तथा और भी ना जाने क्या-क्या थे। हजारों योजनों तक विस्तृत और हजारों वर्षों में परिव्यास इस जनसमूह के विचारों और परंपरा प्राप्त मतों का एक विशाल जंगल खड़ा था। स्मृति, पुराण, लोकाचार और कुलाचार की विशाल वनस्थली में से रास्ता निकाल लेना बढ़ा ही दुष्कर कार्य था। स्मार्त पंडितों ने इसी दुष्कर व्यापार को शिरोधार्य किया। सारे देश में शास्त्रीय वचनों की छानबीन होने लगी। उददेश्य था कि इस प्रकार का सर्वमत निकाल लिया जा सके, श्राद्ध-विवाह की एक रीति-नीति प्रचलित हो सके, उत्सव समारोह का एक ही विधान तैयार हो सके। भारतीय मनीषियों का शास्त्रों को आधार मानकर अपनी सबसे बड़ी समस्या के समाधान का यह सबसे बड़ा प्रयत्न था। जब वे इसी प्रकिया में से गुजर रहे थे उसी समय कबीर का आविर्भाव हुआ थ। यहां दो प्रधान आंदोलनों की चर्चा कर लेनी चाहिए। पहली धारा पश्चिम से आई यह सूफी लोगों की साधना थी। मजहबी मुस्लमान हिंदु धर्म के मर्मस्थान पर चोट नहीं कर पाए थे, वे केवल उसके बाहरी शरीर को विक्षुब्ध कर सकते थे। पर

सूफ़ी लोग भारतीय साधना के अविरोधी थे। उनके उदारतापूर्ण प्रेम मार्ग ने भारतीय जनता का चित्त जीतना आरंभ किया था। फिर भी से लोग आचार—प्रधान भारतीय समाज को आकृष्ट नहीं कर सके। उसका सामंजस्य आचार—प्रधान हिंदु धर्म के साथ नहीं हो सका। यहां यह बात स्मरण रखने की जरूरत है कि न तो सूफ़ी मतवाद और न ही योगमार्गीय निर्गुण परम तत्व की साधना ही उस विपुल वैराग्य के भार को वहन कर सकी जो बौद्ध संघ के अनुकरण पर प्रतिष्ठित था।

कबीरदास अपने युग के सगुध साधना परायण भक्तों से कुछ भिन्न थे। यद्यपि दोनों की साधना का केन्द्र बिंदु यह प्रेम भक्ति है, इसे आनंदकेलि प्रीती, प्रेमलीला आदि जो भी नाम दे दिया जाए, तथापि एक बात में वे सबसे अलग हो जाते हैं।

कबीरदास का रास्ता उल्टा था उन्हें सौभाग्य सुयोग भी अच्छा मिला था। जितने प्रकार के संस्कार पढ़ने के रास्ते हैं वे प्रायः सभी उनके लिए बंद थे। वे मुस्लमान होकर भी अलग में मुस्लमान नहीं थे। हिंदु होकर भी हिंदु नहीं थे। वे साधु होकर भी अगृस्थ नहीं थे, वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे, योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे कुछ भगवान की ओर से ही सबसे न्यार बनाकर भेजे गए थे। वे भगवान नसिंहवतार की मानव प्रतिमूर्ति थे। नृसिंह की भांति वह नाना असंभव समझी जाने वाली परिस्थितियों के मिलन बिंदु पर अवतीर्ण हुए थे। हिरण्यकशिपु ने वा मांग लिया था कि उसको मार सकने वाला मनुष्य हो ना पशु, मारे जाने का समय ना दिन हो ना राम, मारे जाने का स्थान पृथ्वी हो ना आकाश, मार सकने का हथियार ना धातु का हो ना पाषाण का इत्यादि। इसलिए उसे मार सकना एक असंभव और आश्चर्यजनक व्यापार था। नृसिंह ने इसलिए नाना कोटियों के मिलन बिंदु को चुना था। असंभव व्यापार के लिए शायद ऐसी ही परस्पर विरोधी कोटियों का मिलन बिंदु भगवान को अभीष्ट होता है, कबीरदास ऐसे ही मिलन बिंदु पर खड़े थे। यहां से एक ओर हिंदुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुस्लमान, यहां एक ओर ज्ञान निकल जाता है, दूसरी ओर अशिक्षा, यहां एक ओर योगमार्ग निकला जाता है दूसरी ओर भक्ति मार्ग, यहां से एक ओर निर्गुण भावना निकल जाती है दूसरी ओर सगुण साधना, उसी प्रशस्त चौराहे पर खड़े थे। वे दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर विरुद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के दोष गुण उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे। यह कबीरदास का भगवद्दत्त सौभाग्य था। उन्होंने इसका उपयोग भी खूब किया।

वे उस पांडित्य को बेकार समझते थे जो केवल ज्ञान का बोझ ढोना सिखाता है। जो मनुष्य को जड़ बना देता है और भगवान के प्रेम से वंचित करता है। भगवत्—प्रेम पर उनकी दृष्टि इतनी दृढ़ निबद्ध थी कि इस ढाई अक्षर प्रेम को

ही वे प्रधान मानते थे:

पढ़ि पढ़ि पत्थर भया, लिखि लिखि भया जुईट ।

कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकी छीट ॥

पोथी पोथी पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई ।

ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होई ।

उन्होंने समस्त व्रतों, उपवासों और तीर्थों को एक साथ अस्वीकार कर दिया। इनकी संगति लगाकर और अधिकार भेद की कल्पना करके इनके लिए भी दुनिया के मान-सम्मान की व्यवस्था का जाने को उन्होंने बेकार परिश्रम समझा। उन्होंने एक अल्लाह निरंजन निर्लेप के प्रति लगन को ही अपना लक्ष्य घोषित किया। इस लगन या प्रेम का साधन यही प्रेम ही है, और कोई भी मध्यवर्ती साधन उन्होंने स्वीकार नहीं किया। प्रेम ही साध्य है, प्रेम ही साधनव्रत भी नहीं, मुहर्रम भी नहीं पूजा भी नहीं, नमाज भी नहीं, हज भी नहीं, तीर्थ भी नहीं:

एक निरंजन अलहमेरा, अलह मेरा हिंदु तुरुक दुहू नहीं मेरा ।

राखूं व्रत न मरहम जाना, तिस ही सुमिरु जो रहै निदानां ॥

पूजा करु न निमाज गुजारूं, एक निराकार हिरदै नमस्कारूं

ना हज जाउं न तीरथ पूजा, एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा ।

कहं कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन-सूं मन लागा ।

कबीर ने जो समस्त बहाल्यचारों को अस्वीकार कर मनुष्य को साधारण मनुष्य के आसन पर और भगवान को निरख भगवान के आसन पर बैठाने की साधना की थी, उसका परिणाम क्या हुआ और भविष्य में वह उपयोगी होगा या नहीं, यह प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं। सफलता महिमा की एकमात्र कसौटी नहीं है। आज शायद यह सत्य निबिड़ भाव से अनुभव किया जाने वाला है कि सबी विशेषताओं को रखकर मानव मिलन की साधारण भूमिका नहीं तैयार की जा सकती। जातिगत, कुलगत, धर्मगत, संस्कारगत, विश्वासगत, शास्त्रगत, संप्रदायगत बहुतेरी विशेषताओं के जाल को छिनन करके ही वह आसन तैयार किया जा सकता है जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की हैसियत से मिले। जब तक यह नहीं होता तब तक अशांति रहेगी। मारामारी रहेगी। हिंसा प्रतिस्पर्द्धा रहेगी। कबीरदास ने इस महती साधना का बीत बोया था। फल क्या हुआ यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक काल के श्रेष्ठ कवि रवीन्द्रनाथ ने विश्वास गाया है कि जीवन तें जो पूजाएं पूरी नहीं हो सकी हैं मैं ठीक जानता हूं कि वे भी खो नहीं गई हैं। जौल खिलने से पहले ही पृथ्वी पर झड़ गया है, जो मरुभूमि के मार्ग में ही अपनी धारा खो बैठी है, मैं ठीक जानता हूं कि वे भी खो नहीं गई हैं। जीवन में आज जो भी कुछ पीछे

छूट गया है, जो कुछ अधूरा रह गया है, मैं ठीक जानता हूँ वह भी व्यर्थ नहीं हो गया है। मेरा जो भविष्य है जो अब अछूता है, वे सब तुम्हारी वाणी के तार में बज रहे हैं, ये भी खोये नहीं गए हैं—

जीवने यत पूजा हलो न सारा,  
जानि हे जानि ताओ हय निहारा ।  
ये फूल न फुटिते झेरछे धरणीते  
ये नदी मरुपथे हाराजो धारा ।  
जानि हे जानि ताओ हय निहारा ।  
जीवन आजो याहा रयेछे पछे ।  
जानि हे जानि ताओ हय नि मिछे ।  
आमार अनागत आमार अनाहत ।  
तोमार बीणा तारे बाजिछे तारां ।  
जानि हे जानि ताओ हय निहारा ।

—गीताजलि

कबीरदाय की साधना भी न तो लोप हो गई है, न खो गई है। उनका विश्वास था कि जिसके साथ भगवान हैं और जिसे अपने इष्ट पर अखंड विश्वास है उसकी साधना को करोड़—करोड़ भी झकझोरकर विचलित नहीं कर सकते:

माके मन विश्वास है, सदा गुरु है संग रत्र  
कोटि काल झकझोरीहीं तरु न हो चित भंग ।

संदर्भ ग्रंथ

1 कबीर ग्रंथावली— सम्पादक डा० श्यामसुंदर दास

2 कबीर— हजारी प्रसाद द्विवेदी